आज गाना नहीं होगा ? हाँ भाई, कल-कब्जा की बात है । इतना जल्दी कैसे होगा ! फिर कटिहार जंकशन में रेलगाड़ियों और मिलों का अभी इतना शोरगुल होता होगा कि यहाँ तक खबर आ भी नहीं सकेगी ।''

''बिझै ! बिझै !''

''हर टोले के लोग अलग-अलग पंगत में बैठो । अपने-अपने बगल में एक फाजिल पत्ता लगा देना भाई ! अपने-अपने घर की जनाना लोगों के लिए कमबेस नहीं । ···''

गुअरटोली के रौदी बूढ़ा को सभी मिलकर चिढ़ा रहे हैं । रौदी गोप गाँव-गाँव में घूमकर दही बेचता है । उसकी चाल-चलन, उसकी बोला-बानी सबकुछ औरतों जैसी है । सिर और छाती पर से कपड़ा जरा-सा भी सरक जाने पर, औरतों की तरह लजाकर ठीक कर लेता है । मर्दों से बातें करने के समय लजाता है, औरतें उसके सामने किसी भी किस्म का परदा नहीं करतीं । हाट जाते और लौटते समय वह औरतों के झुंड में ही रहता है । ··· अभी सब मिलकर रौदी बूढ़ा को चिढ़ा रहे हैं—''तुम्हारा हिस्सा आँगन में भेज दिया जाएगा । देखो, लालचन ने तुम्हारा पत्ता लगा दिया है ।''

''दुर ! मुँहझौंसे ! बूड़े-पुराने से हँसी-दिल्लगी करते लाज नहीं आती ? हम पूछते हैं तुम लोगों से, कि तुम लोग अपनी बूढ़ी दादी और नानी से भी इसी तरह हँसी-मसखरी करते हो ? इस गाँव के लौंडे-छौंड़े बिगड़ गए हैं । और सारा दोख इसी सिंघवा का है । जहाँ बूढ़े ही बदचाल हों तो लौंडों का क्या हाल ! हम कह देते हैं, हाँ, सुन रखो ! हाँ । ···''

महंथ साहब रात में भोजन नहीं करते हैं ।

''सतगुरु हो ! डागडर साहेब, आपको कितना भुसहरा मिलता है ? दो सौ ? ··· हाँ, यहाँ ऊपरी आमदनी भी होगी । असल आमदनी तो ऊपरी आमदनी है । ··· बहुत अच्छा हुआ । ··· गाँधी जी तो अवतारी पुरुख हैं ।—डागडर साहेब ! आज से करीब पाँच साल पहले एक बार हमारी आँखें आईं, उसके बाद दो महीने तक आँखों में लाली छाई रही । पुरनियाँ के सिविलसार्जन साहेब को पचास रुपया फीस देकर दिखलाया । बहुत दिनों तक इलाज भी करवाया । मगर बेकार । अब तो आप आ गए हैं । अपने घर के डागडर हुए ! ···''

लछमी दासिन टकटकी लगाकर डाक्टर साहब को देख रही है । ··· कितना सुंदर पुरुष है ! बेचारे का इस देहात में मन नहीं लग रहा है । नौकरी कोई भी हो, आखिर नौकरी ही है । मन घर पर टँगा हुआ होगा । बीवी-बच्चों की याद आती होगी । ··· कुछ दिनों में मन लग जाएगा । फिर बाल-बच्चों को भी ले आवेंगे । अचानक वह पूछ बैठती है, ''आपके घर पर और कौन-कौन हैं डाक्टरबाबू ?''

''जी,'' डाक्टर ने जरा हकलाते हुए कहा, ''जी, मेरा कोई नहीं । माँ-बाप

बचपन में ही गुजर गए ।''

लछमी समझ लेती है कि यह सवाल पूछना उचित नहीं हुआ । उसे स्वयं आश्चर्य हो रहा था कि उसने ऐसा प्रश्न किया ही क्यों ! ··· मेरा कोई नहीं !

''लछमी ! रामदास को बुलाओ । अच्छा तो डागडरबाबू, अब आज्ञा दीजिए । आप भी भोजन करके आराम कीजिए । कभी मठ की ओर भी आइएगा । सतगुरु साहेब कहीन हैं—'दरस-परस सतसंग ते छूटे मन का मैल' ।''

लछमी हाथ जोड़कर नमस्कार करती है ।

ब्राह्मणटोली के लोग बालदेव जी से पूछते हैं, ''डागडरबाबू का नौकर तो दुसाध है । और डागडरबाबू कौन जात हैं ? दुसाध का बनाया हुआ खाते हैं ?''

बोलिए प्रेम से ··· महतमा गन्ही की जै !

भंडारा समाप्त हो गया । कोई 'तरुटी' नहीं हुई । सबको 'पूर्ण' हो गया । जो भूल-चूक से छूट गए हैं, उनका हिस्सा कल ले जाइएगा ।

बालदेव जी अगमू चौकीदार और बिरंची के साथ इसपिताल में ही सोएँगे । आज पहली रात है !

आठ

लछमी का भी इस संसार में कोई नहीं !

··· जी, मेरा कोई नहीं ! ··· लछमी सोचती है, उसका दिल इतना नरम क्यों है ? क्यों वह डाक्टर को देखकर पिघल गई ? यह अच्छी बात नहीं । ··· सतगुरु मुझे बल दो ।

सतगुरु के सिवा कोई और भी उसका नहीं । माँ की याद नहीं आती । पसराहा मठ के पास अपनी झोंपड़ी की याद आती है । सुबह होते ही बाबू जी कंधे पर चढ़ाकर मठ ले जाते थे । महंथ रामगुसाईं कितना प्यार करते थे—'आ गई लच्छो ! ले, मिसरी खाएगी ? चाह पीएगी ?' भंडारी एक कटोरे में चाहचूड़ा दे जाता था । बाबू जी बैठकर महंथ साहेब के लिए गाँजा तैयार करते थे । एक चिलम, दो चिलम, तीन चिलम ! पीते-पीते महंथ साहेब की आँखें लाल हो जाती थीं । कभी-कभी बाबूजी भी थर-थर काँपने लगते थे । भंडारी दही लाकर देता था—'खा लो रामचरन भाई ! नशा टूट जाएगा ।' बाबू जी को महंथ साहेब बहुत मानते थे । कोई काम नहीं । दिन-भर महंथ साहेब की धूनी के पास बैठे रहो, गाँजा तैयार करो, चिलम चढ़ाओ । मठ पर ही हमारा खाना-पीना होता था ।

गाँव में जब हैजा फैला तो बाबू जी को महंथ साहेब ने कहा, "रामचरन ! तुम मठ पर ही रहो ।" उन दिनों, दिन-भर में कभी चिलम ठंडी नहीं होने पाती थी । एक दिन महंथ साहेब का बीजक जल गया । न जाने कैसे चिलम की आग बीजक पर गिर पड़ी । महंथ साहेब ने रोते हुए कहा था, "रामचरन, साहेब करोध कीहिन है, दंड भोगना पड़ेगा । अमंगल होगा ।" ··· दूसरे ही दिन मठ के एक साधु का पेट-मुह चलने[1] लगा । तीसरे दिन उस साधु ने देह 'तेयाग' दिया तो महंथ साहेब बीमार पड़े । बाबू जी ने महंथ साहेब की बड़ी सेवा की । शरीर त्यागने के पहले महंथ साहेब ने कहा था, "रामचरन एक बार आखिरी चिलम पिलाओ बेटा !" बाबू जी चिलम तैयार करने के लिए धूनी से आग ले ही रहे थे कि धूनी में ही उलटी होने लगी । महंथ साहेब ने शाम को और बाबू जी ने सुबह को काया बदल दिया । भंडारी ने दूर से ही बाबू जी का दरसन करा दिया था । भंडारी ने कहा था, "मरे हुए आदमी के पास नहीं जाना चाहिए ।"

"लछमी ! ओ लछमी !"

"आई !" लछमी कुनमुनाती उठती है । ··· उस दिन बीजक छूकर कसम खाए थे और आज फिर पुकारने लगे । सतगुरु हो, तुम्हारी बुलाहट कब होगी ? बुला लो सतगुरु अपने पास दासी को !

"लछमी !"

"महंथ साहेब चित्त को शांत कीजिए । सतगुरु का ध्यान कीजिए । माया ···"

"सब माया है लछमी । लेकिन एक बार पास आओ ।"

अंधा आदमी जब पकड़ता है तो मानो उसके हाथों में मगरमच्छ का बल आ जाता है । अंधे की पकड़ । लाख जतन करो, मुट्ठी टस-से-मस नहीं होगी ! ··· हाथ है या लोहार की 'सँडसी' ! दंतहीन मुँह की दुर्गंध ! ··· लार ! ···"महंथ साहेब ! महंथ साहेब, सुनिए !" रामदास धूनी के पास ही है । "महंथ साहेब ! अरे रामदास ! रामदास ! जल्दी उठो जी ! महंथ साहेब को क्या हो गया ।"

महंथ साहेब को सतगुरु ने अपने पास बुला लिया ।

सुबह को सारे गाँव के लोग जमा होते हैं । ··· महंथ साहेब सिद्ध पुरुख थे ! इच्छा-मृत्यु हुई है ! रात को बैठकर, गाँव के बूढ़े-बच्चों को खिलाकर आए और रात में ही चोला बदल लिए । दुनिया में ऐसी मरनी सबों को नसीब नहीं होती । गियानी महातमा थे ।

1. कै-दस्त होना ।

रामदास कहता है, "भंडारा से लौटकर जब सरकार आए और आसन पर 'धेयान' लगाकर बैठे तो देह से 'जोत' निकलने लगा । हम मसहरी लगाने गए तो इसारे से मना कर दिया । हम धूनी के पास बैठकर देखते रहे । सरकार के देह का जोत और तेज हो गया और सरकार एकदम बच्चा हो गए । जोत की चमक से हमारी आँखें बंद हो गईं । हम वहीं धूनी के पास लेट गए । कोठारिन जी जब हल्ला करने लगीं तो आँखें खुलीं ··· ।"

लछमी सुबह कुछ नहीं बोलती । ··· साधुओं को माटी देने की रीत भी नहीं मालूम ? जटा बढ़ा लिया और हाथ में कमंडल ले लिया, हो गए साधू ! ··· "चरनदास ! पहले बीजक पाठ होगा, तब माटी ! इसके बाद सभी संतन के गोर[1] पर माटी दी जाएगी । इतना भी नहीं जानते ?"

"माया जाल बिखंडने सुर गुरु दुख परहरता
सरबे लोक जनाच जेन सततं,
हिया लोकिता ··· ।"

··· नमोस्तु सतगुरु साहेब को
चरणकमल धरी शीश !

सबसे पहले रामदास माटी देता है ! उसके बाद लछमी दासिन मुट्ठी-भर माटी महंथ साहेब की सफेद चादर पर डाल देती है । फिर फूलों की माला । साधु लोग कुदाली से गोर में मिट्टी भरने लगते हैं । चरनदास कहता है, "महंथ साहेब को लगाकर दस महंथों को माटी दिया है । माटी देना भी नहीं जानेंगे ?"

गाँव के 'कीरतनियाँ लोग' समदाउन शुरू करते हैं—

"हाँ रे, बड़ा रे जतन से सुगा एक हे पोसल,
माखन दुधवा पिलाए ।
हाँ रे, से हो रे सुगना बिरिछी चढ़ि बैठल
पिंजड़ा रे धरती लोटाए ··· ?"

गौर के बाद रामदास खँजड़ी बजा-बजाकर 'निरगुन' गाता है—

"कँहवाँ से हंसा आओल, कँहवाँ समाओल हो राम,
कि आहो रामा हो, कोन गढ़ कयल मोकाम, कवन लपटाओल
हो राम !"

डिम डिमिक डिमिक ···
"सुरपुर से हंसा आओल, नरपुर समाओल हो राम,

1. समाधि ।

कि आहो रामा हो, कायागढ़ कयला मोकाम, मायहि लपटाओल हो राम !"

"जै हो, सतगुरु की जै हो ! महंथ साहेब की जै हो ! सब संतन की जै हो !"

मठ सूना लगता है । जीवन में आज पहली बार लछमी समझ रही है महंथ साहेब की कीमत को । ··· नेत्रहीन हो गए थे, कुछ देख नहीं सकते थे, बिना रामदास के सहारा के एक पग चल भी नहीं सकते थे, किंतु ऐसा लगता था कि मठ भरा हुआ है । बिना महंथ के मठ और बिना प्राण के काया !

काँचहि बाँस के पिंजड़ा,
जामें दियरो न बाती हो,
अरे हंसा उड़ल आकाश,
कोई संगो न साथी हो !

··· जो भी हो, संसार में सबसे बढ़कर लछमी को ही प्यार करते थे महंथ साहेब । चढ़ती जवानी में, सतगुरु साहेब की दया से माया को जीतकर ब्रह्मचारी रहे । बुढ़ौती में तो आदमी की इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, माया के प्रबल घात को नहीं सँभाल सकती हैं । इसीलिए तो साधु-ब्रह्मचारी लोग बुढ़ापे में ही माया के बस में हो जाते हैं । यह तो महंथ साहेब का दोख नहीं । उसका भाग ही खराब है । यदि वह नहीं होती तो महंथ साहेब सतगुरु के रास्ते से नहीं डिगते । यह ध्रुव सत्त है । दोख तो लछमी का है । एक ब्रह्मचारी का धरम भ्रष्ट करने का पाप उसके माथे है । अब उसका अपना कौन है ? कोई नहीं ! ···

"महंथ साहेब ! महंथ साहेब ! हमको छोड़कर आप कहाँ चले गए ? दासी के अपराध को छिमा करना गुरु । जीवन में तुम्हारी कोई सेवा सुखी मन से नहीं कर सकी । मरने के समय भी तुमको सुख नहीं दे सकी प्रभू ! ··· छिमा करो !"

जिंदगी-भर के जमे हुए आँसू आज निकल जाना चाहते हैं, रोके रुकते नहीं ।

"जायहिंद कोठारिन जी !"

"दया सतगुरु के ! बालदेव जी, बैठिए !"

बालदेव जी सब भूल गए । लछमी को सांत्वना देने के लिए रास्ते में जितनी बातें सोची थीं, दोहा, कवित्त, सब भूल गए । उसे माये जी की याद आ जाती है । माये जी का वह रूप ··· 'गंगा रे जमुनवाँ की धार नयनवाँ से नीर बही ।'

बालदेव जी की गढ़ी हुई ढाढ़स की बाँध इस तेज धारा में नहीं टिक सकेगी । बालदेव जी की भी आँखें छलछला जाती हैं । फल्गू में भी बाढ़ आती है । वह दिल को मजबूत करके कहते हैं, "कोठारिन जी, सब परमेसर की माया है । हानि-लाभ जीवन-मरन जस-अपजस बिधि हाथ । ··· हम तो सूरज उगने के पहले ही डागडर साहेब के साथ बाहर निकल गए थे । डागडर साहेब को गाँव की चौहद्दी दिखलानी थी । दखिन संथालटोली से सुरु करके, दुसाधटोली तक गली-कूची,

अगवारा-पिछवारा देखते-देखते दस बज गए । वहीं मालूम हुआ कि महंथ साहेब इंतकाल कर गए हैं । डागडर साहेब का भी मन उदास हो गया । वे इसपिताल लौट गए । बाकी टोलों को कल देखेंगे । ··· आज रौतहट हाट में ढोल भी दिला देना है—इसपिताल खुल गया है । शोभन मोची को भेजकर हम यहाँ आए हैं ।"

लक्ष्मी के आँसू थम चुके थे । बालदेव जी ठीक समय पर आ गए । महंथ साहेब बालदेव जी को बहुत प्यार करने लगे थे । पाँच-सात दिनों की जान-पहचान में ही महंथ साहेब ने बालदेव जी को अच्छी तरह पहचान लिया था । रुपैया को बजाकर देखा जाता है और आदमी को एक ही बोली से पहचाना जाता है । महंथ साहेब कहते थे, "सुद्ध विचार का आदमी है । संसकार बहुत अच्छा है ।" इसके पहले महंथ साहेब ने किसी पर इतना विश्वास नहीं किया था । मठ में रोज तरह-तरह के साधु-संन्यासी आते थे । महंथ साहेब रोज यह कहना नहीं भूलते थे—"लछमी इन लोगों का कोई विश्वास नहीं । रमता लोग हैं । इन लोगों से ज्यादे मिलना-जुलना अच्छा नहीं !" नई उमर के साधुओं को पैर की आहट से ही वे पहचान लेते थे । उनके अंतर की दृष्टि बड़ी तेज थी । पिछले साल एक दिन सत्संग में एक नौजवान साधु आकर बैठ गया । रात में आया था, बराहछत्तर[1] जा रहा था । उसके नैन बड़े चंचल ! सत्संग में बैठकर लछमी की ओर टकटकी लगाकर देखने लगा । महंथ साहेब, 'साहेब बचन' सुना रहे थे । आखर[2] कहते-कहते अचानक रुक गए । बोले—"हो नौगछिया के नौजवान उदासी जी ! अरे साहेब, बचन पर धेयान दीजै जी ! लछमी के सरीर पर क्या नैन गड़ाए हैं ? माटी का सरीर तो मिथ्या है, साहेब बचन सत्त !" ··· बेचारा बिना 'बालभोग' किए ही आसन छोड़कर चला गया था । लेकिन, बालदेव जी पर उनका बड़ा विश्वास था । ··· "असल तेयागी यही लोग हैं लछमी !"

बालदेव जी को देखते ही लछमी का दुख आधा हो गया । बालदेव जी कहते हैं, "बड़े भाग से ऐसे लोगों का दरसन मिलता है । हमको तो दरसन मिला, लेकिन सेवा का औसर नहीं मिला । हमारा अभाग ··· है ।"

"बालदेव जी आप तो दास हैं ?"

"जी ! मेरी माँ भी दास थी । माँस-मछली छूती भी नहीं थी ।"

"तब तो आप 'गरभदास' हैं । फिर कंठी क्यों नहीं ले लेते ?"

बालदेव जी ज़रा होंठों पर हँसी लाकर कहते हैं, "कोठारिन जी, असल चीज है मन । कंठी तो बाहरी चीज है ।"

दूसरा साधू होता तो कंठी को बाहरी चीज कहते सुनकर गुस्सा हो जाता । रामदेव गुसाईं होते तो तुरंत चिमटा लेकर खड़े हो जाते, गाली-गलौज करने

---

1. बराहछेत्र, एक तीर्थस्थान । 2. पंक्ति ।

लगते । लेकिन लछमी शांत होकर कहती है, "कंठी बाहरी चीज नहीं है बालदेव जी ! भेख है यह । आप विचार कर देखिए । जैसे आपका यह खद्धड़ कपड़ा है । मलमल और मारकीन कपड़ा पहननेवाले मन से भले ही महतमा जी के पंथ को मानें, लेकिन आप उन्हें सुराजी तो नहीं कहिएगा ?"

लछमी की बातों का जवाब देना सहज नहीं । जब-जब लछमी से बातें होती हैं, बालदेव जी को नई बातों की जानकारी होती है ।

"आप कहती हैं तो ले लेंगे कंठी ।"

"किससे लीजिएगा ?"

"आप ही दे दीजिए ।"

लछमी हँस पड़ती है । शोकाकुल वातावरण में लछमी की मुस्कराहट जान डाल देती है । ··· कितने सूधे हैं बालदेव जी ! मुझे गुरु बनाना चाहते हैं !

"नहीं बालदेव जी, मैं आपको आचारज जी से कंठी दिलाऊँगी । आचारज जी काशी जी में रहते हैं । मैं आपको अपना बीजक देती हूँ । इसका रोज पाठ कीजिए । बीजक पाठ से मन निरमल होता है, अंतर की ज्योति खुलती है ।"

··· बीजक ! एक छोटी-सी पोथी ! 'गयान' का भंडार ! बालदेव जी का दिल धक-धक कर रहा है । लछमी कहती है, "सब हाथ का लिखा हुआ है । उस बार काशी जी से एक विद्यार्थी जी आए थे । बड़े जतन से लिख दिया था । मोती जैसे अच्छर हैं ।"

बीजक से भी लछमी की देह की सुगंधी निकलती है । इस सुगंध में एक नशा है । इस पोथी के हरेक पन्ने को लछमी की उँगलियों ने परस किया है ··· 'पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय, ढाई आखर प्रेम का पढ़ा सो पंडित होय ।'

लछमी को देखने से ही मन पवित्र हो जाता है ।

नौ

डाक्टर प्रशांतकुमार !

जात ? ···

नाम पूछने के बाद ही लोग यहाँ पूछते हैं—जात ? जीवन में बहुत कम लोगों ने प्रशांत से उसकी जाति के बारे में पूछा है । लेकिन यहाँ तो हर आदमी जाति पूछता है । प्रशांत हँसकर कभी कहता है—"जाति ? डाक्टर !"

"डाक्टर ! जाति डाक्टर ! बंगाली है या बिहारी ?"

"हिंदुस्तानी," डाक्टर जवाब देता है ।

जाति बहुत बड़ी चीज़ है । जात-पात नहीं माननेवालों की भी जाति होती है । सिर्फ हिंदू कहने से ही पिंड नहीं छूट सकता । ब्राह्मण हैं ? ··· कौन ब्राह्मण ! गोत्र क्या है ? मूल कौन है ? ··· शहर में कोई किसी से जात नहीं पूछता । शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना ! लेकिन गाँव में तो बिना जाति के आपका पानी नहीं चल सकता ।

प्रशांत अपनी जाति छिपाता है । सच्ची बात यह है कि वह अपनी जाति के बारे में खुद नहीं जानता । यदि उसे अपनी जाति का पता होता तो शायद उसे बताने में झिझक नहीं होती । तब शायद जाति-पाति के भेद-भाव पर से उसका भी पूर्ण विश्वास नहीं हटता । तब शायद ब्राह्मण कहने में वह गर्व अनुभव करता ।

हिंदू विश्वविद्यालय में नाम लिखाने के दिन भी प्रशांत को कुछ ऐसी ही समस्याओं का सामना करना पड़ा था । रात-भर वह जगा रह गया था । ··· प्रशांतकुमार, पिता का नाम अनिलकुमार बनर्जी, हिंदू, ब्राह्मण । सब झूठ ! बेचारा डा. अनिलकुमार बनर्जी, नेपाल की तराई के किसी गाँव में अपने परिवार के साथ सुख की नींद सो रहा होगा । प्रशांत कुमार नामक उसका कोई पुत्र हिंदू विश्वविद्यालय में नाम लिखा रहा है, ऐसा वह सपना भी नहीं देख सकता । ··· लेकिन प्रशांत अपने तथाकथित पिता डा. अनिलकुमार को जानता है । मैट्रिक परीक्षा के लिए फार्म भरने के दिन डा. अनिल उसके पिता के रिक्तकोष्ठ में आकर बैठ गए थे ।

बचपन से ही वह अपने जन्म की कहानी सुन रहा है । घर की नौकरानी, बाग का माली और पड़ोस का हलवाई भी उसके जन्म की कहानी जानता था । लोग बरबस उसकी ओर उँगली उठाकर कहने लगते थे—'उस लड़के को देखते हो न ? उसे उपाध्याय जी ने कोशी नदी में पाया था । बंगालिन डाक्टरनी ने पाल-पोसकर बड़ा किया है ।' फिर लोगों के चेहरों पर जो आश्चर्य की रेखा खिंच जाती थी और आँखों में जो करुणा की हल्की छाया उतर आती थी, उसे प्रशांत ने सैकड़ों बार देखा है । ··· एक लावारिस लाश को भी लोग वैसी ही दृष्टि से देखते हैं ।

प्रशांत अज्ञात कुलशील है । उसकी माँ ने एक मिट्टी की हाँड़ी में डालकर बाढ़ से उमड़ती हुई कोशी मैया की गोद में उसे सौंप दिया था । नेपाल के प्रसिद्ध उपाध्याय-परिवार ने, नेपाल सरकार द्वारा निष्कासित होकर, उन दिनों सहरसा अंचल में 'आदर्श आश्रम' की स्थापना की थी । एक दिन उपाध्याय जी बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए रिलीफ की नाव लेकर निकले, झाऊ की झाड़ी के पास एक मिट्टी की हाँड़ी देखी—नई हाँड़ी । उनकी स्त्री को कौतूहल हुआ, 'ज़रा देखो न, उस हाँड़ी में क्या है ?' नाव झाड़ी के पास पहुँची, पानी के हिलोर से हाँड़ी हिली और उससे एक ढोढ़ा साँप गर्दन निकालकर 'फों-फों' करने लगा । साँप